प्रकाशित: 04 सितम्बर 2017 को पञ्चजन्य में प्रकाशित -

विश्व में फहरी धर्म-ध्वजा

शिकागो में संपन्न धर्म संसद के माध्यम से स्वामी विवेकानंद ने पूरे विश्व को हिन्दुत्व के सर्वसमावेशी स्वरूप से परिचित कराया था शिकागो (11 सितम्बर, 1893) में विश्व धर्म-संसद का आयोजन हुआ, जिसमें अपने-अपने पंथ का पक्ष प्रस्तुत करने दुनिया भर के मत-पंथों के तत्वज्ञानी इकट्ठे हुए। यह आयोजन निस्संदेह भारत के अतीत, उसके पूर्वज, उसके धर्म के प्रति दृष्टि बदल डालने वाला साबित हुआ। और इस नितांत असंभव से दिखने वाले कार्य को जिस महामानव ने इस धर्म-संसद मे शामिल होकर अकेले अपने बलबूते पर कर दिखाया वे थे स्वामी विवेकानंद। धर्म-संसद में भाग लेने पर विवेकानंद को एक साथ कई उद्देश्य पूरे होते दिखे। वास्तव में यह वह समय था जब चर्च संचालित अंग्रेजी-मिशन विद्यालयों-महाविद्यालयों से पढ़कर भारतीय युवक अपने स्व के प्रति हीनता के भाव के साथ बाहर निकलते थे। विवेकानंद के ही शब्दों में- 'बच्चा जब भी पढ़ने को स्कूल भेजा जाता है, पहली बात वह यह सीखता है कि उसका पिता बेवकूफ है। दूसरी बात ये कि उसका दादा है दीवाना, तीसरी बात ये कि उसके सभी गुरु पाखंडी हैं और चौथी ये कि सारे के सारे धर्म-ग्रन्थ झूठे और बेकार हैं।' इन विद्यालयों से पढ़कर निकले ये वे युवक थे जो किसी भी बात को तब तक स्वीकार करने को तैयार नहीं थे जब तक कि वह अंग्रेजों के मुख से न आयी हो। साथ ही, एक बात यह भी थी कि विश्व धर्म-संसद का घोषित उद्देश्य भले ही सभी पंथों के बीच समन्वय के सूत्र ढूंढना था, पर ईसाई चर्च इसको विश्व के सभी पंथों पर इसके (चर्च के) प्रभुत्व को स्वीकार करने के अवसर के रूप में देख रहा था। इस पृष्ठभूमि में विवेकानंद जब धर्म-संसद में भाग लेने उपस्थित हुए तो उन्हें उद्बोधन के लिए अंत तक इन्तजार करना पड़ा। पर जब बोले तो हिंदुत्व के सर्वसमावेशक तत्वज्ञान से युक्त उनकी ओजस्वी वाणी का जादू ऐसा चला कि उसके प्रभाव से कोई भी न बच सका। फिर तो बाद के दिनों में उनके जो दस-बारह भषण हुए। वे अंत में सिर्फ इसलिये रखे जाते थे जिससे उनको सुनने की खातिर श्रोतागण सभागार मे बने रहें। यह देख अमेरिका के तब के तमाम समाचार पत्र उनकी प्रशंसा से भर उठे। द न्यूयॉर्क हेराल्ड लिखता है- 'आॅफरिलीजन्स पार्लियामेंट में सबसे महान व्यक्ति विवेकानंद हैं। उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसे ज्ञानी देश को सुधारने के लिये ईसाई मिशनरी भेजना कितनी बेवकूफी की बात है।' अपने-अपने पंथ-मजहब के नाम पर क्रूसेड और जिहाद के फलस्वरूप हुए रक्तपात की आदी हो चुकी दुनिया के लिये विवेकानंद के उद्बोधन में विभिन्न मतावलंबियों के मध्य सह-अस्तित्व की बातें कल्पना से परे की बातें थीं- 'जो कोई मेरी ओर आता है-चाहे किसी प्रकार से हो- मैं उसे प्राप्त होता हूं।' गीता के उपदेश को स्पष्ट करते हुए विवेकनन्द के द्वारा कही गई यह बात कि हिंदू सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन समस्त पंथों को सत्य मानते हैं, श्रोताओं के लिए अद्भुत बात थी। विवेकानंद गये तो थे केवल धर्म-संसद में शामिल होने, पर इसके परिणामस्वरूप निर्मित वातावरण को देख उन्होंने भारत जल्दी लौटने का इरादा बदल दिया। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में-'धर्म-सभा से उत्साहित होकर स्वामीजी अमेरिका और इंग्लैंड में तीन साल तक रहे और वहां रहकर हिन्दू-धर्म के सार को सारे यूरोप व अमेरिका में फैला

दिया। अंग्रेजी पढ़कर बहके हिन्दू बुद्धिवादियों को समझाना कठिन था, किन्तु जब उन्होंने देखा कि स्वयं यूरोप और अमेरिका के नर-नारी स्वामीजी के शिष्य बनकर हिंदुत्व की सेवा में लगते जा रहे हैं तो उनकी अक्ल ठिकाने आ गई। इस प्रकार, हिंदुत्व को लीलने के लिये अंग्रेजी भाषा, ईसाई मत और यूरोपीय बुद्धिवाद के रूप में जो तूफान उठा था, वह स्वामी विवेकानंद के हिमालय जैसे विशाल वृक्ष से टकराकर लौट गया।'

प्रस्तुति: राजेश पाठक